अर्जन के साथ विसर्जन

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

मानव जीवन में अर्जन और विसर्जन दोनों चलते रहते हैं। मानव को यह सोचना चाहिए कि हमने जीवन में क्या पाया, क्या खोया। अर्जन और विसर्जन नदी के दो तटों के समान है। अर्जन का अर्थ होता है कमाना और विसर्जन का अर्थ है कमाये गये धन को खर्च करना। अर्जन और विसर्जन संतुलन का सूत्र है। मानव जीवन से लेकर प्रकृति पर्यन्त यह नियम लागू रहता है। सृष्टि में भी यह संतुलन दिखायी देता है। सम्पूर्ण सृष्टि संतुलन के आधार पर चल रही है। अगर संतुलन गड़बड़ा जाये तो जीवन में या सृष्टि में असंतुलन आ जाता है। सृष्टि के असंतुलन का अर्थ है भूकम्प आ जाना, सुनामी आ जाना और प्रकृति का प्रकोप हो जाना। इसके अनके कारण है। मानव प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर रहा है। वृक्ष कटते हुए चले जा रहे है उनके स्थान पर नये वृक्षों का रोपण नहीं हो रहा है। जिससे प्रकृति में असंतुलन दिखलाई दे रहा है। अगर यही प्रक्रिया जारी रही तो मानव जीवन दुभर हो जायेगा। सृष्टि की परम्परा बहुत ही जटिल है सृष्टि में जड़ और चेतन दो तत्वों के सहयोग से संतुलन बना हुआ है। जड़ और चेतन में जब मानव के द्वारा विकृति उत्पन्न की जाती है तो वे तत्व अपने स्वाभाविक रूप से विकृत हो जाते हैं।

भारतीय जनमानस की सभी परम्पराएं यह स्वीकार करती है की यह सृष्टि अनेक तत्वों से बनी हुई है, उसमें अर्जन और विसर्जन दोनों तत्व समान रूप से कार्य कर रहे है। सृष्टि का जो स्वरूप हमारे सामने है वह स्थल और जल दो रूपों में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहा है। भारतीय दार्शनिकों ने इसपर सूक्ष्म विवेचन किया है और यह मत प्रतिपादित किया है कि इस सृष्टि में पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये मूल रूप से पांच तत्व हैं जो कुछ भी प्रत्यक्ष हो रहा है वह सब इन्ही के संयोग से है। भारतीय संस्कृति में षड्जीवनिकाय का चिंतन है। षड्जीवनिकाय के अन्तर्गत पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक,

वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीवों की गणना होती है। षड्जीवनिकाय का संरक्षण पर्यावरण की सुरक्षा के लिए बहुत ही आवश्यक है। प्राचीनकाल में पर्यावरण शुद्धि के लिए प्रकृति की पूजा की जाती थी। उस समय प्रकृति और मानव के बीच में संतुलन बना हुआ था। किन्तु आजकल प्रकृति का अंधाधुध दोहन पर्यावरण में असंतुलन पैदा कर दिया है। जिसका परिणाम है अतिवृष्टि और अनावृष्टि, ऊष्मा और ताप का बढ़ना और घटना, वैश्विक परिदृश्य में ताप का बढ़ना और घातक बीमारियों का होना। यदि समय रहते मानव सावधान न हुआ तो इसका परिणाम उसे अवश्य भुगतना होगा। शास्त्रों की विधि को जीवन में उतारकर और निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन करते हुए ही पर्यावरण की सुरक्षा की जा सकती है। इसके लिए मानव प्रकृति से जितना अधिक ग्रहण करे उससे अधिक देने का प्रयास करे तो संतुलन बना रह सकता है।

पर्यावरण और मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारे चारों ओर जो कुछ भी है वह सब पर्यावरण का सहायक तत्त्व है। जीवन का अस्तित्व प्राकृतिक तत्त्वों के संतुलन पर टिका है, अर्जन और विसर्जन पर टिका है। जिस वातावरण से पृथ्वी घिरी है उस वातावरण में प्रत्येक तत्त्व एक अनुपात में है। यदि इस अनुपात में एक सीमा से अधिक अन्तर पड़ जाये तो जीवन समाप्त भी हो सकता है। पर्यावरण के निर्माण में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश वनस्पति, मानव तथा मानवेतर सभी प्राणियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जीवन की सुरक्षा के लिये केवल इतना समझना आवश्यक नहीं है कि प्रकृति हमारे लिये उपयोगी है, समझना यह है कि हम प्रकृति के एक अवयव हैं। जिस प्रकार हममें जीवन है उसी प्रकार प्रकृति के प्रत्येक कण–कण में जीवन है। मानव प्रकृति की उपेक्षा करके अपने अस्तित्त्व को नहीं बचा सकता। यदि उसे अपने अस्तित्त्व की रक्षा करना है तो जीवन के हर उपादानों पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तक को सुरक्षित रखना होगा। इन पांचों तत्त्वों की सुरक्षा और संरक्षा मनुष्य पर निर्भर है। प्रकृति ने मानव को उपभोग के लिये एक अक्षय खजाना दिया है। यदि इसका सदुपयोग किया जाय तो यह समाप्त होने वाला नहीं है, किन्तु यदि इन तत्त्वों का दुरुपयोग किया जाएगा तो समाप्त भी हो जायेगा और मानव के अस्तित्त्व के लिये संकट भी उपस्थित हो जायेगा।

प्रकृति के इस कोश से मानव जितना ग्रहण करे अर्थात् अर्जन करे, उतना देने का अर्थात् विसर्जन का भी प्रयास करे तो लेन–देन में सन्तुलन बना रहेगा और दोनों के अस्तित्व की भी रक्षा होती रहेगी। उपभोक्तावादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण मनुष्य अपने पुराने आदर्शों और परम्पराओं को भूलकर अर्जन अधिक और विसर्जन कम कर रहा है। प्राकृतिक तत्त्वों का अन्धाधुन्ध दोहन कर रहा है। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उपयोग मानव के अनैतिक आचरण का परिणाम है। प्राचीन काल की मनोवृत्ति आज की मनोवृत्ति से सर्वथा भिन्न थी। प्राकृतिक उपादानों में अध्यात्मवृत्ति के कारण पर्यावरण विशुद्ध रहता था। पर्यावरण की विशुद्धि प्राणिमात्र के सुखमय और शान्तिमय जीवन के लिये अपेक्षित है। अर्जन मानव की आवश्यकता है। बिना अर्जन के जीवनयापन करना संभव नहीं है। किंतु उतना ही अर्जन करना चाहिए जितनी आवश्यकता है। आवश्यकता से अधिक अर्जन दूसरों के हिस्से पर अधिकार करना है। इसलिए ज्ञान, दान, पद प्रतिष्ठा का अर्जन और विसर्जन दोनों होना चाहिए। आवश्यकता से अधिक अर्जन पाप है।